शब्द-ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 अगस्त 2014

पुस्तक समीक्षा

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन व स्त्री संघर्ष: विस्मृति से धरातल तक

पुस्तक का नाम : हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास (1857-1947)
लेखिका : नीरजा माधव
दरियागंज, नई दिल्ली
आई एस बी एन नं0: 978-93-80458-35-9
प्रकाशन वर्ष: 2014
मूल्य - रु 180, पृष्ठ-240

अजित कुमार भारती (शोधार्थी)
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
जय प्रकाष विष्वविद्यालय
छपरा, बिहार, भारत

संक्षेप
प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास (1857-1947)' में साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में तत्कालीन इतिहासकारों और साहित्यकारों द्वारा विस्मृत की गयी भारतीय नारियों के योगदान को सामने लाने का उल्लेखनीय प्रयास सुपरिचित कथाकार नीरजा माधव द्वारा किया गया है। उनका यह प्रयास उस काल के इतिहास की शून्यता को भरने में काफी हद तक सफल रहा है।

सन् 1857 से 1947 तक का समय साहित्य और स्वाधीनता आन्दोलन की दृष्टि से एक उल्लेखनीय कालखण्ड है। साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में इस दौरान भारतीयों ने जो महत्वपूर्ण कार्य किए, उनमें स्त्रियों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। उनका मूल स्वर साम्राज्यवादी ताकतों से लोहा लेने वाला ही था। स्वदेशी आन्दोलन को शक्ति प्रदान करने में वे कभी पीछे नहीं रहीं। संयम और मर्यादा का उनका साहित्य विविध विधाओं में पूरे वेग के साथ सामने आया, किन्तु हिन्दी के आलोचकों और इतिहासकारों की दृष्टि में भारतीय नारियों का यह प्रयास ओझल ही रह गया। उनकी इस उदासीनता ने ही कथाकार नीरजा माधव को इस पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का ओझल इतिहास (1857-1947)' की रचना के लिए प्रेरित किया।

स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में अधिकांश स्त्रियों के योगदान का आकलन या तो सतही स्तर पर किया गया अथवा किया ही नहीं गया। अनेक सहायक आन्दोलनों जैसे किसानों और श्रमिकों के आन्दोलनों का इतिहास भी आन्दोलन से जुड़ी स्त्रियों के संघर्ष और प्रयासों को गंभीरता से उल्लेखित नहीं करता। स्वयं इन स्त्रियों के लेखों, डायरियों, आत्मकथाओं के द्वारा इनकी भूमिका का अध्ययन करने पर इस आधी आबादी का सत्य और संघर्ष सामने आता है। अनेक पुरानी मान्यताओं को समाप्त कर स्त्रियों के योगदान का एक अलग इतिहास-ग्रंथ तैयार करने की लेखिका को आवश्यकता महसूस हुई।

नब्बे साल के समय में नारियों की भूमिका और हिन्दी साहित्य को लेखिका ने अपने दृष्टिकोण से चार मजबूत स्तम्भों में बांटकर देखा है -

1.वे नारियां, जो प्रत्यक्षतः 1857 और उसके आगे भी स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़ी हुई थीं।

2.वे नारियां, जो आन्दोलन के साथ ही अपने रचनाकर्म से भी भारतीय जनमानस को उत्प्रेरित करने का कार्य कर रही थीं।

3.वे नारियां, जो आन्दोलन से प्रत्यक्षतः न जुड़कर केवल अपने सृजन यज्ञ के द्वारा स्वतंत्रता देवी का आह्वान कर रही थीं।

4.वे नारियां, जो अशिक्षा और वर्जनाओं की चहारदिवारी में रहते हुए भी अपने वाचिक साहित्य और लोक कला के द्वारा जन जागरण का कार्य कर रही थीं।

हिन्दी इस कालखण्ड में एक नयी भूमिका में सामने आती है। विशाल जनसमूह के संवाद की भाषा और पूरे देश को एक सूत्र में जोड़नेवाली भाषा बनती है, जिसमें ब्रजभाषा की कमनीयता के साथ मैथिली की सहजता और राजस्थानी सर्जनात्मकता को भी आत्मसात करती है। इस काल में एक नयी भाषा-चेतना का उदय होता है, जिसमें छोटी-छोटी क्षेत्रीय भाषाओं की निजता समा जाती है और एक विराट उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्दी भारतीय स्वतंत्रता की प्रथम क्रान्ति की ध्वजवाहिका बनती है। एक परतंत्र कालखण्ड में जब शिक्षा, शिल्प और अस्मिता पर अनेक आयातित पहरे हों तो उसका सबसे सीधा और गहन प्रभाव स्त्री समाज पर पड़ता है। इस काल की स्त्रियों की दशा भी उससे अछूती नहीं थी, लेकिन परतंत्रता की दोहरी बेड़ियों में जकड़े स्त्री-समुदाय के नवजागरण का प्रस्थान बिन्दु भी 1857 को माना जा सकता है। वास्तव में आधुनिक स्त्री-विमर्श की शुरुआत भी इसी दौर से होती है।

लेखिका का कहना है कि अनेक स्त्री रचनाकार कभी इतिहास से इसलिए छूट गई कि वे किसी सम्प्रदाय अथवा ‘रानी-कवि-वंश-परम्परा’ से उद्भूत थी तो कुछ को इसलिए सायास छोड़ दिया गया कि उनकी रचनाओं में साहित्यिक कला कौशल की अपेक्षित विशेषताएं न थीं। कुछ गुमनामी में रहने के कारण इतिहास में दर्ज न हो सकीं तो कुछ को जानबूझकर अनदेखा कर दिया गया। कुल मिलाकर साहित्य के इतिहास को आधा-अधूरा लिख-लिखाकर पूरा मान लिया गया। कहीं कहीं तपती रेत पर जल के छींटे की तरह दो-चार स्त्री नाम दिखाई पड़ते हैं, वह भी संभवतः इसलिए कि कोई उनके इतिहास ग्रंथ को एकांगी न कहे। लेखिका ने इन बिखरी हुई रत्न-राशियों को अपने ग्रंथ में समेटने का सुंदर प्रयास किया है। इन रत्न राशियों में प्रताप कुंवरि बाई (ज्ञान सागर, राम सजुष पच्चीसी, रामचन्द्र नाम महिमा, ज्ञान प्रकाष, प्रताप विनय, प्रेमसागर प्रताप पच्चीसी), मल्लिका देवी (पूर्णप्रकाष चन्द्रप्रभा, कुमुदिनी एवं पारस्य), वृषभानु कुंवरि (विनोदलहरी, बधाई, होरी रहस, पावस एवं श्रीमद रामचन्द्र माधुर्य लीलामृत सार), श्रीमती हरदेवी (लंदन यात्रा, लंदन जुबिली, तालीम तिफला एवं हुक्मदेवी), राजरानी देवी (प्रमदा प्रमोद एवं सती संयुक्ता), रूपकुमारी चंदेल (काव्य-मंजरी), गिरिराज कुंवरि (ब्रजराज विलास, ब्रजराज पाकशास्त्र एवं देसी इलाज संग्रह), गुजराती बाई ‘बुंदेलबाला’, कमला बाई किबे (कृष्णाबाई, बालकथा), ब्रह्मचारिणी चन्दाबाई पंडिता (उपदेश रत्नमाला, निबंध रत्नमाला, आदर्श कहानियां, सौभाग्य रत्नमाला, निबंध दर्पण, आदर्श निबंध आदि), श्रीमती गोपाल देवी (परीलोक, लाल बिल्ली, आटे का लड़का, दयावती, परियों का देश आदि), प्रियंवदा गुप्ता (हमारी दशा, कलियुगी परिवार का दृश्य, आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न एवं धर्मात्मा चाचा और अभागा भतीजा), उषा देवी मित्रा (वचन का मोल, प्रिया, नष्ट नीड़, जीवन की मुस्कान, सोहनी, आंधी के छंद, महावर, नीम चमेली, मेघ मल्लार, रागिनी, सान्ध्य पूर्वी एवं रात की रानी), बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष) (दुलाईवाली, भाई-बहन, चन्द्रदेव से मेरी बातें, हिन्दी के ग्रंथकार, मुरला, मन की दृढ़ता आदि), शिवरानी देवी (प्रेमचंद घर में, कौमुदी, नारी हृदय आदि), तोरन देवी शुक्ल ‘लली’ (जागृति), रामकुमारी चौहान (निश्वास), कुमारी रेहाना बहन तैयबजी (गोपी हृदय, नाश्ते से पहले आदि), चन्द्रावती लखनपाल (स्त्रियों की स्थिति, शिक्षा मनोविज्ञान, समाजशास्त्र के मूल तत्व एवं शिक्षा शास्त्र), सुभद्रा कुमार चौहान (वीरों का कैसा हो बसंत, झांसी वाली रानी, मुकुल, त्रिधारा, सीधे सादे चित्र, बिखरे मोती एवं उन्मादिनी), होमवती देवी (उद्गार, निसर्ग, अर्ध आदि), महादेवी वर्मा (अतीत

के चलचित्र, संकल्पिता, मेरा परिवार, संभाषण, नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा, हिमालय इत्यादि), कमला चौधरी (पिकनिक, उन्माद, यात्रा, प्रसादी कमंडल, बेलपत्र, आपन मरन जगत कै हांसी, चित्रों में लोरियां आदि), चन्द्रवती ऋषभ सेन जैन (नींव की ईट), रामेश्वरी देवी गोयल, सत्यवती शर्मा (प्रथम-सुमन एवं जुगनू का जन्म), पुरुषार्थ (अन्तर्वेदना), सुमित्रा कुमारी सिन्हा (विहाग, पंथनी, प्रसारिका, अचल सुहाग आदि) तारा पाण्डेय (सीकर, श, वेणुकी एवं अन्तरंगिणी), विद्यावती शुकपिक कोकिल (अंकुरिता, पुनर्मिलन, मां, सुहागिन, आरती, फ्रेम बिना तस्वीर आदि), शकुंतला सिरोठिया (मेरे परदेसी), हीरा देवी चतुर्वेदी (मंजरी, नीलम एवं मधुबन), रामेश्वरी देवी 'चकोरी', शान्ति अग्रवाल (स्वतंत्रता संग्राम, गौरव पद्य, बाल वीणा आदि), चन्द्रकिरण सौनरेक्सा (आदमखोर), चन्द्रमुखी ओझा (पराग एवं वन्दना), शांति मेहरोत्रा (निष्कृति, मरीचिका, रेखा, पंच प्रदीप आदि) एवं कुमारी शकुंतला शर्मा (अंजलि) आदि प्रमुख है।

इतिहास से लगभग ओझल इन लेखिकाओं के बारे में इतना तो स्पष्ट है कि जब पुरुष लेखक उपन्यासों और कहानियों में तिलिस्म ढूंढ रहे थे, उस समय ये लेखिकाएं अपनी कहानियों और उपन्यासों में आदर्श समाज के निर्माण की नींव रख रही थी। सामाजिक उपन्यासों और कहानियों की नींव रखने वाली इन लेखिकाओं के बारे में साहित्येतिहास की चुप्पी अनायास थी या सायास, यह एक ज्वलंत प्रश्न है।

इस ग्रंथ के अगले पाठ जिसका शीर्षक 'इतिहासकारों की बाजीगरी' है, में लेखिका नीरजा माधव ने इतिहास को रिक्त रखने वाले इतिहासकारों को माफ नहीं किया है वे कहती हैं जिन हाथों ने कभी छेनी-हथौड़ी अथवा मिट्टी-गारे का स्पर्श तक नहीं किया, वे ताजमहल, हवामहल, कुतुबमीनार अथवा लाल किले के निर्माता मान लिए गए और इतिहास उनका हो गया यह ऐतिहासिक पूंजीवाद अथवा सामन्तवाद का एक छोटा उदाहरण है। कुछ कम अथवा कुछ अधिक ऐसी ही स्थिति हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में भी रही। जिन लेखकों को सामंती वृति का विरोधी और समानता का पोषक माना गया, वही लेखक जब इतिहास लेखन की ओर उन्मुख हुए तो स्त्री रचनाकारों के संदर्भ में सबसे अधिक सामंती वृति के पोषक बन गये। इस ग्रंथ में उल्लेखित इतने स्त्री रचनाकारों की उपस्थिति के बावजूद मात्र पांच-छह लेखिकाओं का नामोल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास के साथ एक विचित्र अपराध है। स्त्री रचनाकारों को नजरअंदाज करने का कारण इस ग्रंथ में यह बताया गया है कि बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखन में संकुचित मानसिकता की झलक अंग्रेजों की गुलामी और उससे भी पहले की हजारों वर्षो की भारतीय मानसिकता की परतंत्रता का परिणाम है। यही कारण है कि जब विवेच्य काल (सन् 1857 से 1947) में कुछ लेखकों द्वारा हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा गया तो सामंती प्रवृति के चलते ही कुछ लेखकों को श्रेष्ठ न होने के नाम पर नकार दिया गया तो कुछेक को किसी खास वर्ग या समुदाय का होने के नाम पर। दोहरी परतंत्रता झेल रही स्त्री रचनाकार इस सामंती वृति का शिकार अधिक हुई। इतिहासकारों एवं साहित्यकारों की इस श्रेणी में आने से साहित्य समाज को 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' जैसा अप्रतिम ग्रंथ देनेवाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं सांस्कृतिक मानवतावादी इतिहास की पीठिका मानी जाने वाली 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के प्रणेता पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी भी नहीं बच सके और इनपर भी स्त्री रचनाकारों की उपेक्षा का आक्षेप इस ग्रंथ में लगाया गया है।

ग्रंथ के अगले पड़ाव में लोकगीत एवं लोक काव्यशास्त्र में स्त्रियों के योगदान की व्यापक चर्चा है। अनेक लोकगीतों में वर्णित विरह, व्यथा, पारिवारिक जटिलताएं, परदेशी पति की आस, श्रम और घर-गृहस्थी की उलझनें स्त्री मन की

अभिव्यक्ति भी है और इस लोक काव्य का प्रतिपाद्य भी। लोक काव्य के अध्ययन पर पुरुष रचित लोक काव्यों में रचयिताओं के नाम स्पष्ट हैं, परन्तु भारतीय समाज में प्रचलित अधिकांश लोकगीतों में रचयिताओं के नाम नहीं हैं, क्योंकि इस प्रकार की किसी भी भावना से परे स्त्रियों ने पारम्परिक लोक धुनों पर अपने शब्दों और मन की भावनाओं को टांकते हुए लोक साहित्य की अविच्छिन्न धारा को आगे की ओर सतत प्रवाहित ही किया, अपनी पहचान बनाने के फेर में वे कभी नहीं पड़ीं।

आज भी लोक में अनेक उत्सवों और आयोजनों में स्त्रियां अनछुए और अनसुने लोकगीत गाने की प्रतिस्पर्धा में पारम्परिक लोकधुनों में अपने शब्द और भाव भर-भरकर नए-नए गीतों का सृजन करती हैं। लोक साहित्य का यह उनका अपना सृजन संसार और शैली है, जिनमें किसी प्रकाशन और पहचान की अपेक्षा नहीं होती। मन के भावों की अभिव्यक्ति ही इन गीतों का उद्देश्य और अभिप्राय होता है। दुखद यही है कि महिला-सृजित इन गीतों का कोई संकलनकर्ता आजतक नहीं हुआ। यही कारण है कि इन वाचिक रचनाओं का कोई प्रामाणिक काल भी निर्धारित न हो सका। सन् 1857 की प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई से लेकर सन् 1947 तक के नब्बे सालों के इतिहास में भी कंठ से कंठ तक की यात्रा तय करनेवाले लोकगीतों के भीतर क्रांति की स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है। हिन्दी को शक्ति और जीवन-रस से अनुप्राणित करने के लिए विभिन्न बोलियों के लोक साहित्य ने बढ़-चढ़कर इसे संबल प्रदान किया। भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखण्डी, मैथिली, राजस्थानी आदि ने अपने लोक साहित्य से हिन्दी को समृद्ध किया। स्त्री साहित्य का इतिहास लिखने के लिए लोक साहित्य को नकार पाना असंभव है। स्त्री लेखन को लोक साहित्य का आश्रय लिए बिना निष्पक्षता से नहीं लिखा जा सकता।

ग्रंथ के अगले चरण में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 से स्वतंत्रता प्राप्ति के काल की प्रमुख वीरांगनाओं का विस्तृत विवरण मिलता है, जिनमें रानी चेन्नमा, रानी भवानी, भीमाबाई, महारानी लक्ष्मीबाई, मैना, बेगम जीनत महल, ईश्वर कुमारी, माता तपस्विनी, बेगम हजरत महल, रानी अवन्तीबाई, अजीजन, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, जानकी देवी बजाज, श्रीमती तोट्टकाडू इक्कावम्मा, मातंगिनी, पार्वती देवी, लाडोरानी जुत्षी, सावित्री देवी, उषा मेहता, बहुरिया रामस्वरूप देवी, कमला कुमारी, उर्मिला शास्त्री, कमला नेहरू, मैडम कामा, सुशीला दीदी, दुर्गा देवी बोहरा (दुर्गा भाभी), निवेदिता, एनी बेसेन्ट, सुनीति चौधरी एवं शान्ति घोष आदि प्रमुख हैं। लेखिका इतिहासकारों पर यह आक्षेप लगाती हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों की सक्रियता का मात्र कहीं-कहीं रेखाचित्र ही इतिहास लेखन में दिखाई पड़ता है। इतिहास में महिलाओं के योगदान को केवल उनकी उपस्थिति की दृष्टि से ही रेखांकित करना आवश्यक नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन के संतुलित चित्रण के दृष्टिगत भी यह आवश्यक है।

अंत में लेखिका का कहना है कि ये नब्बे साल (सन् 1857 से 1947) साहित्य और स्वाधीनता आन्दोलन की दृष्टि से भारतीय इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे। यह कालखण्ड साहित्य में नयी राह बनाने का भी समय रहा है। एक ओर जहां कुछ लेखक राजभक्ति और देशभक्ति के द्वंद्व में झूलते हुए साहित्य सृजन कर रहे थे, वहीं स्त्री रचनाकार दृढ़तापूर्वक देशभक्ति अथवा भक्तिपरक रचनाओं में संलग्न थी। विदेशी शासन से मुक्त होने के महासंग्राम में नारी ने अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग के साथ योगदान देकर अपने समर्थ सहयोगी होने का परिचय पूरे समाज को दिया। यह बात अलग है कि उसे अपने ही समाज के पुरुष वर्चस्ववाली मानसिकता का शिकार होना पड़ा। इतिहासकारों ने जब लेखनी

उठाई तो उसके योगदान को कमतर करके आंका अथवा अनदेखी करने की कोशिश की।

इस प्रकार हम सकते हैं कि लेखिका नीरजा माधव ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास (1857-1947)' की रचना में अपना श्रेष्ठ दिया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इस कालखण्ड की अज्ञात एवं बिखरी हुई रत्न राशियों (स्त्री-रचनाकारों) को खोजने एवं एक सूत्र में पिरोने में अपना अदम्य एवं अथक प्रयास किया है जिसके परिणामस्वरूप हम उन रत्न-राशियों एवं उनके साहित्य से रूबरू हुए हैं। उन्होंने लोक काव्य के उस क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया है जिसमें जाने से अच्छे से अच्छा इतिहासकार भी कदम खींच लेता है। उनके सराहनीय प्रयत्नों का ही सुफल है जिससे हमें इस ग्रंथ में लोक काव्य की असली रचयिताओं से परिचित होने का मौका मिला है। लेखिका ने इस ग्रंथ में कभी भी उन साहित्यकारों एवं इतिहासकारों को माफ नहीं किया है जिन्होंने जानबूझकर या अज्ञानतावश इन स्त्री मणिकाओं को अपनी लेखनी से दूर रखा।

यह ग्रंथ अपने प्रयत्न में काफी हद तक सफल है। निश्चय ही इस क्षेत्र में अभी काफी कुछ किया जाना शेष है। अभी भी बहुत सी रत्न-राशियाँ अज्ञानता के अंधेरे में छिपी हुई हैं, लेकिन इस सकारात्मक प्रयास को किसी भी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नीरजा माधव के शब्दों में ही "मैं आशान्वित हूँ कि एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। कभी एक सौ ग्यारह भी हो जायेंगे।